फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष: समाधान का गांधीवादी रास्ता

प्रेम सिंह

1

करीब एक शताब्दी पुराने फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष को लेकर पक्ष-पोषण और विश्लेषण का काम पिछले 75 सालों में बहुत हो चुका है। अब उसके स्थायी समाधान की जरूरत है। यह तभी संभव होगा जब आधुनिक विश्व-इतिहास की इस शायद जटिलतम समस्या से संबद्ध सभी पक्ष गंभीरता, निष्ठा और परस्पर विश्वास के साथ समाधान की दिशा में प्रयास करें। पिछले दो महीने से जारी फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के अभी तक के सर्वाधिक खूनी अध्याय से सबक लेकर अगर समाधान की सच्ची प्रेरणा से इस दिशा में काम होगा, तो निकट भविष्य में स्थायी समाधान की आशा की जा सकती है। कहने की जरूरत नहीं कि सच्ची प्रेरणा घृणा-जनित अथवा/और निहित स्वार्थ-जनित उत्तेजनाओं की कैद से मुक्ति पाकर ही आगे का रास्ता बना सकती है।

हालांकि, यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि बाजार और हथियार की संयुक्त चालक-शक्ति से दौड़ने वाली आधुनिक सभ्यता की रगों में प्रवाहित उत्तेजनाओं से मुक्ति पाना आसान नहीं है। आधुनिक सभ्यता को मानव-उत्तेजनाओं के अटूट सिलसिले के रूप में भी पढ़ा जा सकता है, जहां सच्ची प्रेरणाएं उत्तेजनाओं का शिकार होने के लिए वैसे ही अभिशप्त होती हैं, जैसे सीधी या बदले की हिंसा में शिशुओं की हत्याएं की जाती हैं! इजराइल और उसके समर्थक देश/बुद्धिजीवी तथा फिलिस्तीन और उसके समर्थक देश/बुद्धिजीवी सभी कमोबेश उत्तेजना रूपी "बुरी आत्मा" की गिरफ्त में बने हुए हैं। नागरिक समाज का एक बड़ा हिस्सा भी, जो सीधे सत्ता-प्रतिष्ठानों से नहीं जुड़ा है, उत्तेजना की अधीनता की दशा में दिखाई देता है। संघर्ष के शांतिपूर्ण समाधान की सच्ची इच्छा से प्रेरित लोगों की स्थिति महाभारतकार जैसी है - "मैं दोनों हाथ ऊपर उठा कर पुकार-पुकार कर कह रहा हूं, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता!"

फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष हिंसा पर आधारित आधुनिक सभ्यता की गोद में पला-बढ़ा है। लिहाजा, इसका अहिंसक/शांतिपूर्ण स्थायी समाधान पाना आसान नहीं है। फिर भी सच्ची प्रेरणा से उस दिशा में लगातार प्रयास होगा, तो रास्ता बन सकता है। इस प्रयास में आधुनिक सभ्यता की कड़ी टीका करने वाले मोहनदास कर्मचंद गांधी से मदद ली जा सकती है, जिसने इस हिंसक सभ्यता के बीचों-बीच खड़े होकर कहा था - "मेरा कोई शत्रु नहीं है"। और जिसने अन्याय के प्रतिकार की अहिंसक कार्य-प्रणाली दुनिया को दी है।

फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के मौजूदा चरण पर लिखने वाले कुछ लेखकों ने गांधी को उद्धृत किया है। ऐसे लेखों में गांधी के मुख्यत: "द ज्यूज" ('हरिजन',26 नवंबर 1938), "दि जेविश क्वेश्चन" ('हरिजन', 27 मई 1939), "ज्यूज एण्ड फिलिस्तीन" ('हरिजन', 21 जुलाई 1946) लेखों के आधार पर फिलिस्तीन-इजराइल समस्या की गांधी की समझ तथा यहूदियों और अरबों के बारे में उनकी धारणा का संदर्भ दिया गया है। इस संदर्भ में गांधी के दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आंदोलन में उनके घनिष्ठ सहयोगी रहे हरमन कॉलनबाख, सोंजा श्लेसिन और एचजेएच पोलक आदि यहूदियों का जिक्र भी आया है।

फिलिस्तीन-इजराइल समस्या पर गांधी के विचारों और पक्ष (स्टैन्ड) पर कुछ विद्वानों ने विशेष अध्ययन किया है। कुछ ने गांधीवाद की रोशनी में फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के समाधान की संभावनाओं पर भी विचार किया है। जवाहरलाल विश्वविद्यालय में आधुनिक मध्य-पूर्व के शिक्षक पीआर कुमारस्वामी ने इस विषय में गांधी के विचारों और पक्ष को प्रश्नांकित किया है। फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के मौजूदा दौर पर लिखे अपने लेख "ऑन पेलेस्टाइन एण्ड इजराइल, गांधीज डबल स्पीक ऑन नॉन-वॉयलेन्स" (फिलिस्तीन-इजराइल मामले में अहिंसा पर गांधी का दोहरा रवैया) ('दि इंडियन एक्सप्रेसस', 24 अक्तूबर 2013) में उन्होंने गांधी की अहिंसा के प्रति निष्ठा पर तीखा हमला बोला है। ऐसा लगता है यह लेख फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के समाधान की गांधीवादी संभावना के खिलाफ पेशबंदी की मंशा से लिखा गया है।

गांधी-विशेषज्ञों को यह स्पष्ट करना है कि क्या गांधी ने फिलिस्तीन-इजराइल मामले में अरबों की हिंसा पर चुप्पी साधते हुए केवल यहूदियों को अहिंसा का उपदेश दिया है? क्या वे मुस्लिम-यहूदी विवाद में "महात्मा" के आसन से स्खलित हुए हैं? फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष पर गांधी के विचार "खिलाफत", धार्मिक पहचान के आधार पर भारत के "विभाजन की आशंका" और "उपनिवेशवाद" के तात्कालिक संदर्भों से प्रभावित रहे हो सकते हैं। ऐसा होना गलत नहीं, बल्कि स्वाभाविक है। क्योंकि विचार सापेक्ष होते हैं। हालांकि, फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष को लेकर गांधी की समझ पर सवाल उठाने वालों को इजराइल, ब्रिटेन और अमेरिका के अभी तक के उन कारनामों और बयानों पर भी सवाल उठाना चाहिए, जिन्हें बर्बरतापूर्ण के अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता।

2

जो भी हो, फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष पर गांधी के तत्कालीन विचार/मान्यताएं अन्याय के प्रतिकार की गांधी की अहिंसक कार्य-प्रणाली (सत्याग्रह, सविनय नागरिक अवज्ञा, उपवास) की प्रासंगिकता एवं सार्थकता के आड़े नहीं आने चाहिए। डॉक्टर राममनोहर लोहिया ने गांधी की "अहिंसक कार्य-प्रणाली को उनकी सीख का सबसे ज्यादा क्रांतिकारी मर्म" बताते हुए लिखा है: "इसलिए, असली बात है व्यक्तिगत और आदतन सिवल नाफरमानी। हमारे युग की सबसे बड़ी क्रांति कार्य-प्रणाली की है, एक ऐसी कार्य-पद्धति के द्वारा अन्याय का विरोध जिसका चरित्र न्याय के अनुरूप है। यहां सवाल न्याय के स्वरूप का उतना नहीं है, जितना उसे प्राप्त करने के उपाय का। वैधानिक और व्यवस्थित प्रक्रियाएं अक्सर नाकाफ़ी होती हैं। तब हथियारों का इस्तेमाल उनका अतिक्रमण करता है। ऐसा न हो, और मनुष्य हमेशा वोट और गोली के बीच ही भटकता न रहे, इसलिए सिवल नाफरमानी की कार्य-प्रणाली संबंधी क्रांति सामने आई है। हमारे युग की क्रांतियों में सर्वप्रमुख है हथियारों के विरुद्ध सिविल नाफरमानी की क्रांति, यद्यपि वास्तविक रूप में यह क्रांति अभी तक कमजोर ही रही है।" ('मार्क्स गांधी एण्ड सोशलिज्म', पृष्ठ xxxi-ii)

लोहिया ने गांधी के "हृदय-परिवर्तन" के सिद्धांत में निहित मर्म को भी पकड़ा है। अपने जीवन के गांधी के साथ जुड़े एक प्रसंग में वे लिखते हैं: "और इसमें हृदय-परिवर्तन की पूरी कहानी छिपी है, जो एक ऐसा पद है जिसका अक्सर न केवल महात्मा गांधी के आलोचकों ने, बल्कि उनके प्रशंसकों और अनुयायियों ने भी दुरुपयोग किया है। यदि कुछ लोगों ने इसे क्रांति को नकारने के हथियार के रूप में देखा है, तो दूसरों ने वास्तव में माना है कि हृदय-परिवर्तन (के सिद्धांत) ने क्रांति होने से रोक दी है। दोनों ही मामलों में, प्रशंसकों और आलोचकों ने "हृदय परिवर्तन" पद को ऐसे हास्यास्पद स्तर पर पहुंचा दिया है कि इसका महात्मा गांधी की जीवन की समझ से कोई संबंध नहीं है। ... गांधीजी ने अपने जीवन का करीब एक साल स्मट्स, इरविन और बिड़ला के हृदयों को बदलने में लगाया, जबकि उन्होंने दुनिया-भर में लाखों लोगों में साहस पैदा करके उनके हृदय बदलने में चालीस वर्ष से अधिक समय व्यतीत किया। ... इस सब में जो बात सामने आती है वह गांधीजी की यह धारणा है कि मनुष्य अच्छा हो सकता है, भले ही कुछ स्थितियों में वह बुरा भी बन जाता हो।" ('मार्क्स गांधी एण्ड सोशलिज्म', पृष्ठ 156-57)

अन्याय के प्रतिकार की अहिंसक कार्य-प्रणाली और मनुष्य के अच्छा होने की संभावना का स्वीकार - गांधी के इन दो सूत्रों के साथ फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के गांधीवादी समाधान पर गंभीरता से विचार और काम किया जाना चाहिए। बेशक गांधीवादी समाधान का प्रयास समाधान के अन्य प्रयासों के समानांतर हो। वैसे भी यह माना जा रहा है कि गाजा-युद्ध की थकान के बाद दोनों पक्षों में जो विराम अथवा समझौता होगा, वह भंगुर (फ्रेजाइल) और अल्पजीवी होगा।

गांधीवादी समाधान की शुरुआत फिलिस्तीनी पक्ष से हो सकती है - होनी चाहिए। लेकिन उपलब्ध अध्ययनों के मुताबिक, कारण जो भी हों, फिलिस्तीन में आधे से ज्यादा लोग समस्या के समाधान के लिए हिंसा के पक्षधर हैं। (इजराइल में तो फिलहाल बहुतायत हिंसा के पक्षधरों की है ही।) ऐसे में बेहतर होगा कि फिलिस्तीनी समाज के पहले विश्व-समाज यह पहल करे। पहल में गंभीरता और सातत्य होगा, तो संयुक्त रूप से फिलिस्तीनी-इजराइली समाज पर उसका प्रभाव पड़ेगा। यह सही है कि फिलिस्तीन और इजराइल के लोगों के मन में एक-दूसरे के धर्म और धर्म-स्थल को लेकर गहरी मान्यताओं ने जड़ जमाई हुई है। गांधी का यह विचार कि "विश्व के धर्मग्रंथों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन करने के बाद, मुझे उन सभी में पाई जानी वाली सुंदरता को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है।" ("अबाउट कन्वर्शन", 'हरिजन', 28 सितंबर 1935) दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता/सद्भाव पैदा कर सकता है। विश्व-व्यवस्था को चलाने वाले शक्तिशाली देशों और संयुक्त-राष्ट्र समेत सभी वैश्विक संस्थाओं को भी उस अहिंसक आंदोलन का गंभीर नोटिस लेना पड़ेगा।

लेकिन यह एक नई पहल होनी चाहिए। वर्तमान व्यवस्था के तहत फन्डिंग पर निर्भर संस्थाओं/समूहों/व्यक्तियों की मार्फत यह काम नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, मध्य-पूर्वी देशों में काम करने वाले कुछ अधिकार समूहों (राइट्स ग्रुप्स) की शिकायत है कि 7 अक्तूबर के हमास के हमले के बाद पश्चिमी देशों ने उनकी फन्डिंग बंद कर दी है। अमेरिका स्थित 'एमके गांधी इंस्टिट्यूट ऑफ नॉन-वायलेंस' चलाने वाले गांधी के प्रपोत्र अरुण गांधी कतिपय गैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) के बुलावे पर अगस्त 2004 में रामल्ला आए थे। वहां एक सभा में उन्होंने फिलिस्तीनियों से अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए गांधी के अहिंसक रास्ते पर चलने का आह्वान किया था। 2010-11 की सर्दियों में भारत से भी करीब सवा सौ नागरिकों का एक समूह गाजा की यात्रा पर गया था। इस तरह के एनजीओ-धर्मी फुटकर प्रयास एक "ईवेंट" भर बन कर रह जाते हैं। नागरिक प्रयासों को नागरिक सहयोग-राशि के सहारे चलाया जाना चाहिए। भले ही, जैसा कि गांधी का कहना था, लक्ष्य की दिशा में एक कदम चला जाए।

दरअसल, फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के गांधीवादी समाधान के बहाने परिवर्तनकारी रचनात्मक सोच के नागरिकों द्वारा एक नया वैश्विक शांति एवं निरस्त्रीकरण आंदोलन खड़ा किया जा सकता है। इससे एक नए मनुष्य और समाज के निर्माण की वह प्रक्रिया बहाल होगी, जो "विचारधाराओं और इतिहास के अंत" की नवउदारवादी घोषणाओं के चलते अवरुद्ध हो चुकी है; और धार्मिक, नस्लीय, जातिवादी आदि टकराहटों में फंस कर रह गई है। साथ ही नई और आने वाली पीढ़ियों के लिए 19वीं और 20वीं शताब्दियों के प्रगतिशील मानवतावादी विचारों/अवधारणाओं/सिद्धांतों/विचारधाराओं को नए संदर्भों में व्याख्यायित/विकसित होने का अवसर मिलेगा।

3

हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में लॉ के प्रोफेसर नोह फेल्डमेन ने "इमैजिन अ पेलेस्टीनियन मूवमेंट लेड बाइ गांधी" (गांधी के नेतृत्व में फिलिस्तीनी आंदोलन की कल्पना कीजिए), ('ब्लूमबर्गडॉटकॉम', 27 दिसंबर 2017) लेख लिखा है। इस लेख में लगभग सभी संबद्ध पक्षों को संबोधित करते हुए फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के गांधीवादी समाधान की पेशकश और आशा की गई है। लेखक ने अहिंसक प्रतिरोध आंदोलन चलाने की पहली जिम्मेदारी फिलिस्तीन पर डाली है। इस आशा के साथ कि अगर फिलिस्तीन अहिंसक रास्ते पर डटा रहता है, तो इजराइल में लेफ्ट, माडरेट, और अंतत: दक्षिणपंथी/जिओनवादी भी अहिंसक रास्ते के साथ आएंगे। और अंतत: अमेरिका व अरब राष्ट्र भी।

कहने की जरूरत नहीं कि गांधी की अन्याय के प्रतिकार की अहिंसक कार्यप्रणाली उनके जीवन-दर्शन का अभिन्न अंग है। हालांकि, आधुनिक हिंसक सभ्यता से जुड़े किसी संघर्ष में उसका फुटकर उपयोग किया जा सकता है। पहले कई देशों में कई लोगों/समूहों ने ऐसा किया है। लेकिन यह तभी संभव है जब कम से कम प्रतिरोध के अहिंसक रास्ते के प्रति निर्विकल्प निष्ठा रखी जाए। हिंसा का विकल्प खुला रखते हुए अहिंसक रास्ते को आजमाने से वांछित नतीजा नहीं निकल सकता। फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के जटिल यथार्थ को देखते हुए नोह फेल्डमेन को शायद खुद भी गांधीवादी रास्ते की स्वीकृति की संभावना पर विश्वास नहीं है। शायद इसीलिए उसने लेख में प्रकल्पना-शैली (फेंटेसी स्टाइल) अपनाई है। साथ ही यह भी लिखा है कि फिलिस्तीनी सब कुछ करके देख चुकने के बाद भी अभी तक 'द्वि-राष्ट्र' के सिद्धांत पर आधारित समाधान हासिल नहीं कर पाए हैं। ऐसे में लक्ष्य हासिल के लिए गांधीवादी रास्ते को आजमा कर देखने में कोई हर्ज नहीं है। जो भी हो, 6 साल पहले लिखा गया यह लेख फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के समाधान की दिशा में संभावनाओं के द्वार खोलता है।

अन्याय के प्रतिकार की अहिंसक कार्य-प्रणाली को केवल गांधी के प्रयोगों और अनुभवों तक सीमित रखने की जरूरत नहीं है। उसे प्रवाहमानता में स्वीकार किया जाना चाहिए। आज के वैश्विक परिदृश्य के मद्देनजर अहिंसक कार्य-प्रणाली के साथ बहुत-सी नवीन उद्भावनाएं जोड़ी जा सकती हैं। साथ ही फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के अहिंसक समाधान के साथ दुनिया के अन्य संघर्षों के समाधान की दिशा में बढ़ा जा सकता है।

फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष का अहिंसक समाधान एक लंबी प्रक्रिया का परिणाम ही हो सकता है। अहिंसा की प्रामाणिकता को निर्णायक रूप से स्वीकार करके ही उस प्रक्रिया को चलाया जा सकता है। गांधी ने एक "पिछड़े" और उपनिवेशित समाज में भारत की आजादी और रचनात्मक कामों में महिलाओं की बड़े पैमाने पर हिस्सेदारी सुनिश्चित की। यह उनकी जुटाव (मोबिलाइजेशन) की युक्ति (टैक्टिक्स) भर नहीं, अहिंसक सभ्यता के निर्माण की दिशा में उठाया गया एक संभावना-गर्भित कदम था। फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के अहिंसक समाधान के लिए वैश्विक महिला समाज की गांधी के समय से भी ज्यादा बड़ी और महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

लेखकों/कलाकारों को मानव-आत्मा का शिल्पी कहा जाता है। आधुनिक काल में लेखक और उनकी रचनाओं को प्रतिमानवीयता का प्रतिपक्ष मानने की जैसे रूढ़ि बन चुकी है। समाजवादी और पूंजीवादी दोनों खेमों में समान रूप से यह मान्यता चलती है। यहां इस मूलभूत प्रश्न पर विचार करने का अवसर नहीं है कि क्या रचनाकार वास्तविक दुनिया के दुख-दर्दों के बरक्स अपनी समानांतर दुनिया रच कर खुद को और पाठकों को जटिल यथार्थ से जूझने की भूमिका से विरत करते हैं? लेकिन यह पूछा जा सकता है कि मानवता पर गहन संकट के दौर में भी रचनाकार प्राय: चुप/तटस्थ बने रहते हैं। बहुत कम लेखकों/कलाकारों ने प्रतिमानवीय सत्ता के खिलाफ निर्णायक आवाज उठाई है। फिलिस्तीन और इजराइल समेत दुनिया में प्रतिष्ठित लेखकों/कलाकारों की कमी नहीं है। मानवता का यह महत्वपूर्ण हिस्सा फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के अहिंसक समाधान की प्रभावी आवाज हो सकता है।

बच्चों की एक बड़ी दुनिया होती है। संख्या में भी और हर बच्चे की कल्पना में भी। हिंसक संघर्षों में वे सबसे ज्यादा कमजोर और असुरक्षित समूह होते हैं। आधुनिक सभ्यता एक तरफ बच्चों को रासायनिक हथियारों से आसान मौत सुलाने और दूसरी तरफ उन्हें मानव-बम बना कर भयानक मौत देने के लिए कुख्यात है। गृह-युद्धों, युद्धों और आतंकी हमलों में बच्चों को मिलने वाले घावों और मौतों से आधुनिक सभ्यता का इतिहास भरा पड़ा है। उसके पास बच्चों को हलाक करने के तर्क बहुत-से हैं - वे मानव-शील्ड हैं, बदी की संतान हैं, मातृभूमि पर कुर्बान होने वाले शहीद हैं, उन्हें जन्नत नसीब हो रही है! गाजा में 7 हजार से ज्यादा बच्चों की हत्या हो जाने के बाद

भी बचे हुए बच्चों को बचाने की नहीं, उनकी मौत का औचित्य प्रतिपादित करने की कवायद हो रही है।

आधुनिक सभ्यता के मरकज अमेरिका, जिसने पृथ्वी पर प्रथम "बंदूक-समाज" (गन सोसाइटी) की सृष्टि की है, का कहना है गाजा में युद्ध रोका जाएगा तो भविष्य में और ज्यादा संघर्ष बढ़ेगा। क्या अमेरिका कहना चाहता है कि बच्चों की हत्याओं से युद्ध के अंत में बचे बच्चों और बड़ों को सबक मिलेगा! फिलिस्तीन और मध्य-पूर्व में कुछ लोग कहते हैं कि हमास एक विचार है, उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। तो क्या फिलिस्तीनी बच्चों को नष्ट करके उस विचार को नष्ट किया जा रहा है! लेकिन कतर के प्रधानमंत्री का कहना है कि इस युद्ध के नतीजे में पूरे मध्य-पूर्व के बच्चे रेडिकलाइज होंगे। बच्चों की हत्याओं पर विमर्श का यह स्तर है!

मैंने पहले भी गाजा में बच्चों की हत्याओं पर लिखा है। मन को भारी कर देने वाली इस चर्चा को और आगे नहीं बढ़ाना चाहता। कहना यह है कि संजीदा लोगों को बच्चों की दुनिया पर ठहर कर गंभीरता से सोचना चाहिए। बच्चों के नाम पर सरकारों और संस्थाओं से अनुदान-पद-पुरस्कार पाने वाले महानुभाव यह नहीं कर सकते। बच्चे हिंसा से बचे रहें, तो अहिंसक सभ्यता की रचना में उनकी सर्वाधिक सार्थक और दूरगामी भूमिका हो सकती है। यह कैसे संभव हो, विश्व-समाज को देखना है।

अंत में एक महत्वपूर्ण सवाल - फिलिस्तीन-इजराइल संघर्ष के गांधीवादी समाधान की प्रक्रिया में में गांधी के अपने देश के समाज की क्या वैचारिक अथवा/और सक्रिय भूमिका होगी? आशा है सभी सरोकारधर्मी नागरिक इस पर सोचेंगे और आगे का कर्तव्य तय करेंगे।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फ़ेलो हैं।*)